ओ३म
आर्यों का
आदि देश
VedicKranti.in
स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

ग्रन्थकार

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती वैदिक सिद्धान्तों के मर्मज्ञ विद्वान्, यशस्वी लेखक तथा कुशल वक्ता हैं। संस्कृत वाङ्मय में वैदिक, जैन तथा बौद्ध आचार्यों द्वारा स्थापित सूत्रात्मक दर्शनशास्त्र की परम्परा का आधुनिककाल में प्रतिनिधित्व करने का श्रेय स्वामी विद्यानन्द सरस्वती को है। स्वामीजी की प्रतिपादन शैली का अपना वैशिष्ट्य है। पूर्वाश्रम में प्रिन्सिपल लक्ष्मीदत्त दीक्षित के नाम से प्रख्यात स्वामी विद्यानन्द जी ने ५० वर्ष तक शिक्षा-क्षेत्र में कार्य किया है। लगभग २० वर्ष तक वे डिग्री तथा पोस्ट ग्रेजुएट कालिजों के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित रहे हैं। आपकी योग्यता तथा सेवाओं के उपलक्ष्य में भारत के राष्ट्रपति ने आपको पंजाब विश्वविद्यालय के प्रतिष्ठित सदस्य के रूप में मनोनीत किया। कुछ समय तक आपने गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन के आचार्य पद को भी सुशोभित किया। वर्षों तक आप गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय की विद्यासभा (सेनेट) तथा उसकी अनेक उच्चस्तरीय समितियों के सदस्य रहे। पंजाब, हरियाणा व दिल्ली की अनेक धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक तथा सामाजिक संस्थाओं से आपका निकट सम्बन्ध रहा है। आजकल आप माडल टाउन (डी. १४/१६) दिल्ली में निवास करते हैं।
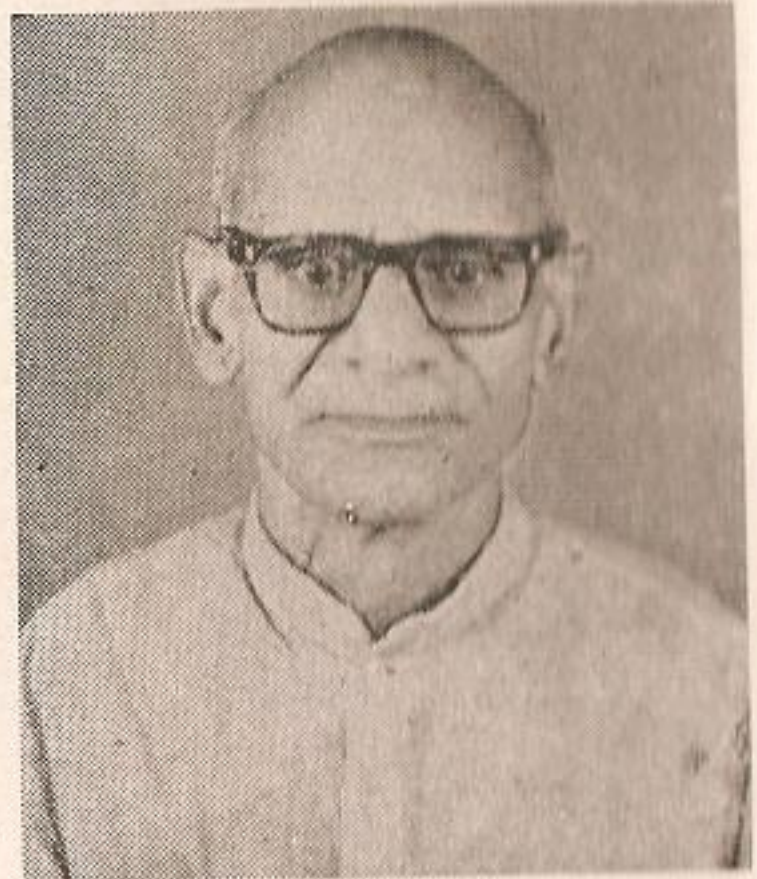
✧ ओ३म् ✧

आर्यों का आदि देश

स्वामी विद्यानन्द सरस्वती

वैदिक यति मण्डल

आर्य्या आर्यावर्त्तीयाः

वेद में आये आर्य और दस्यु शब्द गुणवाचक हैं, जातिवाचक नहीं। इन शब्दों के वास्तविक अर्थों को न जानकर अथवा जानबूझकर पाश्चात्य विद्वानों ने यह सिद्ध करने का यत्न किया कि आर्य नाम से पुकारे जानेवाले लोग भारत के मूल निवासी नहीं हैं। यहाँ के मूल निवासी—इस देश के असली मालिक वे लोग हैं जिन्हें आज आदिवासी या पिछड़ी जातियाँ कहा जाता है। यह कल्पना हमें अपमानित करने और आपस में लड़ाने के लिए की गई। वेदमन्त्रों के काल्पनिक अर्थ करके यह भी कहा गया कि आर्य लोग आदिवासियों से ही नहीं लड़ते थे, आपस में भी उनका युद्ध होता था। दक्षिणात्यों के मन में उत्तर-भारतीयों के प्रति घृणा उत्पन्न करने के लिए यह भी सिद्ध करने का यत्न किया गया कि उत्तर भारतीय आर्य विदेशी आक्रान्ता हैं जिन्होंने बाहर से आकर यहाँ के मूल निवासियों पर तरह-तरह के अत्याचार किये और विजयी होकर इस देश की धरती पर बलात् अधिकार कर बैठे।

पाश्चात्य मतानुसार जिन आर्यों ने ऋग्वेद जैसा महान् (और निर्विवाद-रूप से संसार में सबसे पहला) ग्रन्थ लिखा, उन्होंने अपनी इतनी भारी विजय का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया। संसार में कौन ऐसी सभ्य जाति है जिसने अपनी विजयगाथा न लिखी हो। यदि लङ्का विजय का उल्लेख रामायण में और पाण्डवों की विजय का उल्लेख महाभारत में यहाँ कवि कर सकते थे तो आर्यों ने तथाकथित द्रविड़ों पर जो महान् विजय प्राप्त की, उसका वर्णन क्यों किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलता? इससे स्पष्ट है कि न आर्य बाहर से आये और न यहाँ के तथाकथित पूर्व निवासी द्रविड़ों को यहाँ से खदेड़ा। यह पाश्चात्यों की एक कूटनीतिक चाल थी।

वास्तविकता यह है कि इस देश की पावन धरती पर सबसे पहला पग आर्यों ने ही रक्खा था और आदिकाल से अर्थात् १९७२९४९०८६ वर्षों से यहाँ रह रहे हैं। वस्तुतः अंग्रेज़ी राज्य को सुदृढ़ करने, इस देश की संस्कृति को समूल नष्ट करने और इसे ईसाई-मुसलिम बहुल बनाने के लिए यह एक सुनियोजित षड्यन्त्र है जिससे हम आज भी अपने को बचा नहीं पा रहे हैं। इसी षड्यन्त्र के परिणामस्वरूप पहले हिन्दुओं और मुसलमानों में उत्पन्न विद्वेष के कारण पाकिस्तान बना और अब उत्तर में खालिस्तान की विभीषिका खड़ी है तो पूर्व में ईसाइस्लाम और गोरखालैण्ड आदि का खतरा सिर पर मँडरा रहा है। उधर दक्षिण में बात-बात में विघटनवादी भावनाएँ पनप रही हैं।

इन सब कुत्सित भावनाओं के मूल में आर्यों के विदेशी आक्रान्ता होने की मिथ्या कल्पना है जिसका प्रत्याख्यान करना अत्यन्त आवश्यक है। मेरे अनुरोध पर स्वामी विद्यानन्द सरस्वती ने इस दिशा में एक प्रयास किया है। इसका मूल्यांकन तो पाठकों के हाथ में है।

सर्वानन्द सरस्वती
अध्यक्ष
वैदिक यति मण्डल

दयानन्द मठ
दीनानगर (पंजाब)

॥ ओ३म् ॥

आर्यों का आदि देश

हम अतीत के आधार पर भविष्य के लिए वर्तमान में रहते हैं। इसलिए यदि किसी का भविष्य बिगाड़ना हो तो उसके अतीत को बिगाड़कर यह काम आसानी से हो सकता है। अतीत को सर्वथा मिटाना किसी प्रकार सम्भव नहीं, किन्तु उसके स्वरूप को विकृत रूप में प्रस्तुत कर उसके प्रति घृणा उत्पन्न करना सम्भव है। अंग्रेज़ों के भारत में आने का प्रयोजन इस देश पर शासन करना और उसके द्वारा ईसाइयत का प्रचार व प्रसार करना था। अपनी सत्ता को स्थायित्व प्रदान करने के लिए यहाँ के लोगों में फूट डालना आवश्यक समझा गया। इसके लिए उन्होंने कुछ लोगों के इस देश के मूल निवासी होने और कुछ के विदेश से आकर यहाँ के मूल (आदि) निवासियों को पराजित कर इस देश पर अधिकार कर लेने के विचार को जन्म दिया। फूट के इस बीजारोपण का ही यह परिणाम है कि आज हमारे देश की छोटी से छोटी पाठशाला से लेकर विश्वविद्यालयों तक में यही पढ़ाया-सिखाया जाता है कि इस देश के मूल निवासी कोल, द्रविड़, भील, संथाल आदि हैं। कालान्तर में ईरान आदि देशों से आकर कुछ लोगों (आर्यों) ने इस देश पर आक्रमण किया। यहाँ के आदिवासियों में से कुछ को उन्होंने मार डाला, कुछ को बन्दी बनाकर अपना दास बना लिया और कुछ डरके मारे दक्षिण की ओर भागकर वहाँ जा बसे।

यहाँ हम दिल्ली के स्कूलों में छठी कक्षा में पढ़ाई जानेवाली

'प्राचीन भारत' नामक पुस्तक का वह अंश उद्धृत कर रहे हैं जिसमें 'वैदिक युग का जीवन' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है—

"जब पहले-पहल आर्यों ने भारत में पदार्पण किया तो उन्हें भूमि के लिए उन लोगों से युद्ध करना पड़ा जो यहाँ पहले से रह रहे थे। आर्य इन लोगों को दस्यु या दास कहते थे। आर्य गौर वर्ण के थे और दस्यु काले रंग और चपटी नाकवाले थे। दस्यु उन देवताओं की पूजा नहीं करते थे जिनकी आर्य पूजा करते थे। वे जो भाषा बोलते थे उसे आर्य नहीं समझते थे। आर्य संस्कृत बोलते थे। आर्यों ने दस्युओं को युद्ध में पराजित किया, परन्तु उनके साथ दयालुता का व्यवहार नहीं किया और अनेक दस्युओं को दास बना लिया। दस्युओं को आर्यों की सेवा करनी पड़ती थी। उन्हें कठिन और नीच काम भी करने पड़ते थे।"

फूट के इस बीजारोपण ने जहाँ एक ओर उत्तर और दक्षिण में भेदभाव को जन्म दिया, वहाँ दूसरी ओर सवर्ण-असवर्ण, जनजाति, अनुसूचित जनजाति, परिगणित-जाति आदि के नाम देकर लोगों में परस्पर विरोध, घृणा और द्वेष को बढ़ावा दिया। आज भारत की एकता व अखण्डता तथा उसकी अनेकविध समस्याओं के समाधान में सबसे बड़ी बाधा आर्यों के विदेशी कहे जाने की मिथ्या धारणा है।

आश्चर्य और दुःख की बात तो यह है कि देश के स्वतन्त्र होने के चालीस वर्ष बाद भी हम इन्हीं मिथ्या कल्पनाओं में जी रहे हैं। उसके दुष्परिणाम हमारे सामने अनेक रूपों में आ रहे हैं। अब यह कहा जा रहा है कि यदि दो सौ वर्ष पूर्व आनेवाले अंग्रेज़ विदेशी थे तो तीन हज़ार वर्ष पूर्व आनेवाले आर्य विदेशी क्यों नहीं ? देश उस दिन स्वतन्त्र माना जाएगा जिस दिन अंगरेज़ों की तरह अक्रान्ता के रूप में आनेवाले आर्य भी (लगभग ६० करोड़) इस देश से निकल जाएँगे और शासन की बागडोर आदिवासी नाम से पुकारे जानेवाले इस देश के मूल निवासियों के हाथों में आएगी।

मुसलमानों और ईसाइयों की ओर से यह कहा जा रहा है कि

इस देश के लोगों में से मुसलमान और ईसाई बननेवाले लोगों में अधिसंख्य छोटी जातियों—अनुसूचित-जातियों तथा जनजातियों, गिरिजनों आदि में से हैं, क्योंकि इन्हीं वर्गों के लोग भारत के मूल निवासी हैं, इसलिए हिन्दू से मुसलमान व ईसाई बने लोग ही इस देश के असली मालिक हैं, अन्य सब विदेशी हैं। अंग्रेज़ चले गये, परन्तु भारत पर सबसे पहले आक्रमण करनेवाले आर्यों को पहले निकलना चाहिए। इस सन्दर्भ में 'Muslim India' के २७ मार्च, १९८५ के अंक में प्रकाशित यह वक्तव्य द्रष्टव्य है—

"This land (India) belongs to those who are its original inhabitants and hence its rightful owners. It is they who built the Harappa and Mohenjodaro, the world's most ancient civilisation. Most of India's Muslims and christians are converts from these sons of the soil. They are either Dalits or tribals. In all foreign invasions, it is these people who defended India. They (Aryans) don't belong to India and hence don't love India. They are foreigners, the enemy within. As Aryans, they are also India's first foreigners. If Muslims and Christians are foreigners and must get out of India, as India's first foreigners, the Aryans are duty bound to get out first. Those who came first must leave first.

४ सितम्बर, १९७७ को संसद् में राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत सदस्य फ्रैंक एन्थोनी ने माँग की थी—"Sanskrit should be deleted from the 8th schedule of the constitution because it is a foreign language brought to this country by foreign invaders, the Aryans." (Indian Express, 5.9.77), अर्थात् संविधान के आठवें परिशिष्ट में परिगणित भारतीय भाषाओं की सूची में से संस्कृत को निकाल देना चाहिए, क्योंकि यह विदेशी आक्रान्ता आर्यों के द्वारा लाई जाने के कारण विदेशी भाषा है। सन् १९७८ के प्रारम्भ में भारत ने अपना पहला उपग्रह अन्तरिक्ष में छोड़ा था। उसका नाम भारत के प्राचीन

वैज्ञानिक आर्यभट्ट के नाम पर रक्खा गया था। इस अवसर पर २३ फ़रवरी, १९७८ को द्रमुक (द्रविड़ मुनेत्र कषगम) के प्रतिनिधि लक्ष्मणन ने राज्यसभा में माँग की थी कि भारतीय उपग्रह का नाम 'आर्यभट्ट' नहीं रक्खा जाना चाहिए था, क्योंकि यह विदेशी नाम है। कुछ वर्ष हुए, तमिलनाडू के सलेम नामक नगर में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के आर्य होने के कारण उनकी मूर्ति के गले में जूतों का हार पहनाकर झाड़ुओं से मारते हुए बाज़ारों में जलूस निकाला गया था।

ऋषि क्रान्तदर्शी होता है। सबसे पहले ऋषि दयानन्द ने इस भ्रान्त धारणा के विरुद्ध आवाज़ उठाई। उन्होंने घोषणा की—"किसी संस्कृत ग्रन्थ में वा इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये और यहाँ के जंगलियों से लड़कर, जय पाके, उन्हें निकालके इस देश के राजा हुए। पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है?"

यही बात निष्पक्ष पाश्चात्य विद्वान् म्यूर ने कही है—

"I must, however, begin with candid admission that, so far as I know, none of the Sanskrit books, not even the most ancient, contains any distinct reference or allusion to the foreign origin of the Aryans. There is no evidence or indication in the Rigveda of the words Dasa, Dasyu, Asura etc. having been used for non-Aryans or original inhabitants of India."

—Muir : Original Sanskrit Texts. Vol II.

अर्थात्—"यह निश्चित है कि किसी भी संस्कृत ग्रन्थ में, चाहे वह कितना ही पुराना क्यों न हो, आर्यों के विदेशमूलक होने का उल्लेख नहीं मिलता है। ऋग्वेद में जिन दास, दस्यु एवं असुर जैसे नामों का उल्लेख है, वे अनार्यमूलक अर्थात् आदिम जातियों के लिए प्रयुक्त किये गये हों—इस प्रकार का कोई प्रमाण या संकेत उपलब्ध नहीं हैं।"

विश्वविख्यात इतिहासविद् एलफ़िन्सटन के कथन से भी ऋषि दयानन्द की मान्यता की पुष्टि होती है। उसने लिखा है—

"Neither the code of Manu, nor in the Vedas, nor in any

book which is older than the code of Manu, is there any allusion to the Aryan prior residence in any country outside India."

—Elphinstion : History of India, Vol. I.

अर्थात्—न मनुस्मृति में, न वेदों में और न मनुस्मृति से प्राचीन किसी अन्य ग्रन्थ में (भारत आने से पूर्व) आर्यों के भारत से बाहर अन्य किसी देश में रहने का उल्लेख है।

आर्य लोग भारत के बाहर से आये और भारत के मूल निवासी कोल, द्रविड़, भील, सन्थाल आदि ही यहाँ के आदिवासी थे, यह विचार सबसे पहले 'Cambridge History of India' में दिया गया। तत्पश्चात् इस मान्यता का प्रचार करने के लिए बनारस और लाहौर में केन्द्र बनाये गये। बनारस में टी० एच० ग्रिफ़िथ को बनारस कालिज का प्रिंसिपल बनाया गया। लाहौर में ओरियण्टल कालिज के प्रिंसिपल के पद पर ए० सी० बुलनर को नियुक्त किया गया। इन कालिजों में संस्कृत में एम०ए० करनेवाले छात्रों (विशेषकर ब्राह्मणों) को उच्चतम छात्रवृत्ति देकर आक्सफ़ोर्ड भेजा जाता था। वहाँ से शिक्षा प्राप्त कर स्वदेश लौटनेवालों को यत्र-तत्र प्रिंसिपल या उच्च कोटि का प्रोफ़ेसर बनाया जाता था। लाहौर और बनारस में भी आक्सफ़ोर्ड में नियत पाठ्यक्रम रक्खा जाता था।

अंग्रेज़ों ने यह भी अनुभव किया कि जबतक वैदिक धर्म की जड़ों को खोखला नहीं किया जाएगा तबतक वे अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल नहीं होंगे। इसके लिए वैदिक साहित्य को विकृतरूप में प्रस्तुत करना आवश्यक था। इस कार्य के लिए कर्नल बोडन नाम के व्यक्ति ने भारी धनराशि आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी को दी। यह ठीक है कि विदेशी विद्वानों ने भारतीय न होते हुए भी, संस्कृत साहित्य में, विशेषतः वैदिक वाङ्मय में, अनुकरणीय उद्योग किया। परन्तु जातीय पक्षपात तथा शास्त्रविषय में गहरा ज्ञान न होने के कारण वे वैदिक साहित्य को उसके यथार्थ रूप में प्रस्तुत न कर सके। विदेशियों ने जिस ध्येय

को लक्ष्य में रखकर हमारे साहित्य में इतना घोर परिश्रम किया, उसका पता मोनियर विलियम्स द्वारा अपनी संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी की भूमिका में लिखे इन शब्दों से लग जाता है—

"That the special object of his munificent bequest was to promote the translation of the scriptures into English, so as to enable his countrymen to proceed in the conversion of the natives of India to the Christian Religion."

भाव यह है कि मिस्टर बोडन के ट्रस्ट द्वारा संस्कृत के ग्रन्थों का अंग्रेज़ी में अनुवाद भारतीयों को ईसाई बनाने में अपने देशवासियों को सहायता पहुँचाने के लिए हो रहा है। यही मोनियर विलियम्स अपनी पुस्तक 'The Study of Sanskrit in relation to missionary work in India' (1861) में लिखते हैं—

When the walls of the mighty fortress of Hinduism are encircled, undermined and finally stormed by the soldiers of the cross, the victory of christianity must be signal and complete."

भाव यह है कि मोनियर विलियम्स का सारा परिश्रम हिन्दुत्व को नष्ट करके ईसाइयत की पताका फहराने के लिए था।

संस्कृत के यूरोपियन विद्वानों में लार्ड मेकाले द्वारा नियुक्त प्रोफेसर मैक्समूलर सर्वोपरि माने जाते हैं। उनके वेद के अनुसन्धान तथा अनुवादकार्य में लगने का क्या उद्देश्य था, यह उन्होंने अपनी पत्नी के नाम लिखे पत्र में स्पष्ट किया है—

"This edition of mine and the translation of the Veda will hereafter tell to a great extent on the fate of India. It is the root of their religion and to show them what the root is, I feel sure, is the only way of uprooting all that has sprung from it during the last three thousand years." (Life and Letters of Frederick Maxmueller, Vol. I chap. XV, Page 34.)

अर्थात् मेरा यह संस्करण तथा वेद का अनुवाद भारत के भाग्य

को दूर तक प्रभावित करेगा। यह उनके धर्म का मूल है और उन्हें यह दिखाना कि यह मूल कैसा है, गत तीन हज़ार वर्षों में इससे उत्पन्न होनेवाली सब बातों को मूलसहित उखाड़ फेंकने का एकमात्र उपाय है।

भारत सचिव (Secretary of State for India) के नाम १६ दिसम्बर १८६८ को लिखे अपने पत्र में मैक्समूलर ने लिखा—

"The ancient religion of India is doomed. Now, if christianity does not step in whose fault will it be ?" (Ibid, Vol. I, chap. XVI, p. 378)

अर्थात् भारत का प्राचीन धर्म अब नष्टप्रायः है। अब, यदि ईसाइयत उसका स्थान नहीं लेती, तो इसके लिए कौन दोषी होगा ?

मैक्समूलर के प्रयासों की सराहना करते हुए उसके घनिष्ठ मित्र मिस्टर ई० बी० पुसे ने अपने पत्र में उसे लिखा—

"Your work will mark a new era in the efforts for the conversion of India."

अर्थात् आपका कार्य भारतीयों को ईसाई बनाने के प्रयत्न में नवयुग लानेवाला होगा।

इस प्रकार अंग्रेज़ों और अंग्रेज़ी शिक्षा का उद्देश्य भारतीय लोगों में अपने प्राचीन साहित्य, इतिहास, संस्कृति और सभ्यता के प्रति अश्रद्धा और घृणा पैदा करना था। वेदों के सम्बन्ध में जो दृष्टिकोण उन्होंने प्रस्तुत किया उसके द्वारा वे वेदों को गडरियों के गीत या जंगलियों की बड़बड़ाहट सिद्ध करने के साथ-साथ आपस में लड़ाने और देश की एकता और अखण्डता को आघात पहुँचाने में सफल हुए। उनके योजनाबद्ध प्रयास का यह परिणाम निकला कि धीरे-धीरे भारतीय विद्वान् भी उनके रंग में रंगे जाने लगे और पाश्चात्य विचारधारा के प्रचार और प्रसार में सहायक सिद्ध होने लगे। इन भारतीयों ने भी वही राग अलापना आरम्भ कर दिया जो अंग्रेज़ चाहते थे। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जैसे मनीषी और महान्

देशभक्त भी इस भ्रान्त धारणा के शिकार हो गये। उन्होंने भी आर्यों को विदेशी आक्रान्ता मानते हुए उन्हें उत्तरी ध्रुव से आया हुआ बताया। उनके अनुसार आज से कोई दस हज़ार वर्ष पूर्व उत्तरी ध्रुव में बर्फ़ का तूफ़ान आया। इसी के कारण आर्य लोग वहाँ से भागे और यूरोप, मध्य एशिया, ईरान और भारत में आकर आबाद हो गये। इस प्रश्न को लेकर बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् उमेशचन्द्र विद्यारत्न तिलक महाराज के घर पूना पहुँचे। विद्यारत्न जी अपनी उस भेंट का विवरण देते हुए अपनी पुस्तक 'मानवेर आदि जन्मभूमि' (पृष्ठ १२४) में लिखते हैं—

"आमि गतवत्सरे तिलक महादयेर आतिथ्य ग्रहण करिया छिलाम। ताहार सहित ये विषये अमार क्रमागत पाँच दिन बहु संलाप हइया छिलो। तिनि आमाके तांहार द्वितलगृहे वसिया सरलहृदये बलिया छेन ये 'आमी मूल वेद अध्ययन कारि नाई, आमी साहिब दिगेर अनुवाद पाठ करिया छि।'

अर्थात् तिलक महोदय ने स्पष्ट कह दिया कि "हमने मूलवेद नहीं पढ़े। हमने तो साहिबों (पाश्चात्य विद्वानों) का किया अनुवाद पढ़ा है।"

उत्तरी ध्रुव विषयक अपनी मान्यता के सन्दर्भ में तिलक महोदय ने लिखा है—"It is clear that Soma juice was extracted and purified at night in the Arctic."—अर्थात् 'उत्तरी ध्रुव में सोमरस रात्रि के समय निकाला जाता था।' इसका प्रत्याख्यान करते हुए नारायण भवानी पावगी ने अपने ग्रन्थ 'आर्यावर्त्तांतील आर्यांची जन्मभूमि' में लिखा है—"किन्तु उत्तरी ध्रुव में तो सोमलता होती ही नहीं, वह तो हिमालय के एक भाग मुंजवान पर्वत पर होती है।"

तिलक महोदय कहते हैं कि आर्य लोग उत्तरी ध्रुव से ईरान और ईरान से भारत पहुँचे। परन्तु ईरान के स्कूलों में पढ़ाया जाता है कि आर्य भारत से जाकर ईरान में बस गये हैं—

"चन्द हज़ार साल पेश अज़ ज़माना माज़ीरा बुज़ुर्गी अज़ निज़ाद आर्या अज़ कोहहाय कफ़ काज़ गुज़िश्त: बर सर ज़मीने कि इमरोज़ मस्कने मास्त क़दम निहादन्द। ब चूँ आबो हवाय ईं सर ज़मीरा मुआफ़िक़ तब'अ खुद याफ़्तन्द दरीं जा मस्कने गुज़ीदन्द व आं रा बनाम ख़ेश ईरान ख़्यादन्द।"—देखो जुग़राफ़िया पंज क़ितअ बनाम तदरीस दरसाल पंजुम इब्तदाई सफ़ा ७८, कालम १, मतब अ दरसनहि तिहरान, सन् हिजरी १३०९, सीन अव्वल व चहारम अज़ तर्फ़ विज़ारत मुआरिफ़ व शरशुद:।

भाव यह है कि कुछ हज़ार साल पहले आर्य लोग हिमालय से उतर कर आये और वहाँ का जलवायु अनुकूल पाकर ईरान में बस गये। इस उद्धरण से स्वामी दयानन्द द्वारा प्रस्तुत तिब्बत में सृष्टि होने और वहीं से आर्यों के इधर-उधर फैल जाने विषयक मत की पुष्टि होती है। ईरान के बादशाह सदा अपने साथ 'आर्यमेहर' की उपाधि लगाते आये हैं। फ़ारसी में 'मेहर' सूर्य को कहते हैं। ईरान के लोग अपने-आपको सूर्यवंशी आर्य मानते रहे हैं। धार्मिक मतान्धता के कारण अब यह स्थिति बदलती जा रही है।

राजनीतिक दृष्टि से स्वतन्त्र हो जाने पर भी पाश्चात्यों के मानसपुत्रों की आँखों पर उनका दिया हुआ चश्मा आज भी ज्यों का त्यों चढ़ा हुआ है। भारतीय संस्कृति के महान् पोषक के० एम० मुंशी ने अपनी पुस्तक 'लोपामुद्रा' में प्राचीन आर्यों के विषय में लिखा—

"इनकी भाषा में अब भी जंगली दशा के स्मरण मौजूद थे। मांस भी खाया जाता था और गाय का भी। 'अतिथिग्व' गोमांस खिलाने-वाले की बहुमानास्पद उपाधि थी। ऋषि सोमरस पीकर नशे में चूर रहते और लोभ तथा क्रोध का प्रदर्शन करते थे। वे जुआ खूब खेलते थे। सर्वसाधारण सुरा पीकर नशा करते थे। ऋषि युद्धक्षेत्र में हज़ारों का संहार करते थे। वे रूपवती स्त्रियों को आकर्षित करने के लिए मन्त्रों की रचना करते थे। कुमारी से उत्पन्न बच्चे अधम, पतित

नहीं माने जाते थे। कई ऋषियों के पिताओं का पता न था। आर्य भेड़िये की तरह लोभी थे। बीभत्सता या अश्लीलता का कोई विचार न था। आत्मा का कोई ख़याल नहीं था। ईश्वर की कल्पना नहीं, नाम नहीं, मान्यता नहीं। स्वदेश की कल्पना नहीं थी। दस्यु भारतवर्ष के शिवलिङ्गपूजक मूल निवासी थे।"

पुस्तक की भूमिका में श्री मुंशी ने लिखा है कि अपनी पुस्तक में उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह ऋग्वेद के आधार पर लिखा है। हमने पत्र लिख कर उनसे उन वेदमन्त्रों को उद्धृत करने का आग्रह किया जिनके आधार पर उन्होंने अपनी पुस्तक में यह सब लिखा है इसके उत्तर में उन्होंने अपने पत्र दिनांक २ फ़रवरी १९५० में लिख भेजा—

"I believe the Vedas to have been composed by human beings in the very early stage of our culture and my attempt in this book has been to create an atmosphere which I find in the Vedas as translated by western scholars and as given in Dr. Keith's Vedic Index. I have accepted their views of life and conditions in those times."

अर्थात्—मैं वेदों को अपनी संस्कृति के प्रारम्भिक काल में मनुष्यों द्वारा रचित मानता हूँ। मैंने अपनी पुस्तक में जो कुछ लिखा है, उसका आधार पाश्चात्य विद्वानों, विशेषत: डॉक्टर कीथ द्वारा किया गया वेदों का अनुवाद है। मैंने उस समय के लोगों के जीवन और रहन-सहन आदि के विषय में उनको प्रमाण माना है।

सायण और उसके अनुगामी पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों के नैरुक्त प्रक्रिया की उपेक्षा करके लौकिक संस्कृति के आधार पर वेदार्थ करने का यह दुष्परिणाम हुआ कि हम सभ्य संसार के सामने मुँह दिखाने योग्य न रहे। यौगिक अर्थ न लेकर रूढ़ अर्थों के आधार पर वेदों को मनोरंजक क़िस्से-कहानियों का पिटारा बना दिया। इस प्रकार हमारी मस्तिष्करूपी भूमि में वेदों के प्रति अश्रद्धा की पथरीली चट्टानें खड़ी हो गईं।

वेद में इतिहास

वेद के त्रिकालाबाधित होने से वेद की अन्त:साक्षी से किसी इतिहास सम्बन्धी बात का निश्चय नहीं हो सकता। इसलिए वेद के सन्दर्भों को देखकर एक दो शब्दों के आधार पर किया गया कोई निर्णय तर्कसंगत नहीं हो सकता। लोकमान्य तिलक ने वेद में निर्दिष्ट कतिपय नक्षत्रों की विशेष स्थिति के आधार पर वेद के काल का निश्चय किया है। उन्होंने अपने ग्रन्थ ओरायन (Orion) में लिखा है कि ऋग्वेद के १०वें मण्डल के ८६वें सूक्त में वसन्त सम्पात का मृगशीर्ष नक्षत्र में होने का वर्णन है। मृगशीर्ष नक्षत्र वर्त्तमान उत्तर-भाद्रपदा से ६ नक्षत्र पहले है। वसन्त सम्पात को एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र में जाने में ९६० वर्ष लगते हैं। इस हिसाब से मृगशीर्ष नक्षत्र में वसन्त सम्पात आज से लगभग ६००० वर्ष (९६० × ६) पूर्व रहा होगा। यही इस सूक्त के कारण वेद का रचना काल है। आपातत: यह तर्क ठीक प्रतीत होता है। परन्तु थोड़ा-सा गहराई में जाने पर इसका थोथापन स्पष्ट हो जाता है। नक्षत्रों की कुल संख्या २७ है। इस प्रकार हर २५९२० (९६० × २७) वर्षों बाद वसन्त सम्पात क्रान्तिवृत्त पर घूमकर फिर अपने पहले स्थान पर आ जाता है। यदि ईसा से लगभग ६००० वर्ष पूर्व वसन्त सम्पात मृगशीर्ष नक्षत्र में था तो उससे लगभग २६००० वर्ष पूर्व अर्थात् आज से लगभग ३२००० वर्ष पूर्व भी उसी नक्षत्र में था। उससे भी पहले २६००० वर्ष पूर्व वसन्त सम्पात मृगशीर्ष नक्षत्र में आता रहा। सृष्टि के लगभग दो अरब वर्ष[1] के स्थिति काल में कितनी बार यह स्थिति

---

1. Scientists (Prof. Nagi and Prof. Zumberg of the University of Arizona) have found traces of ancient life and matter dating back to 2,300 million years. The discovery was made in rocks found in Transaval area of South Africa, 320 K.M. north of Johansberg.—The Tribune, 13th July 1975.

आई। सोमवार हर सात दिन के बाद फिर से आ जाता है। तब मात्र सोमवार कहने से आज से एक सप्ताह पूर्व का ही सोमवार क्यों समझा जाए? एक महीना, एक वर्ष या सौ वर्ष पहले का सोमवार भी क्यों न समझा जाए। वेद में वर्णित यह नक्षत्रस्थिति आज से ६००० वर्ष पहले की ही है, उससे पहले की नहीं—इसके लिए कोई निश्चयात्मक हेतु नहीं है। आज से लगभग २० हज़ार वर्ष बाद (२६०००—६०००) वसन्त सम्पात फिर मृगशीर्ष नक्षत्र में होगा। तब, उससे पाँच सौ वर्ष पश्चात् पैदा होनेवाला विद्वान् इस तर्क के आधार पर वेद को अपने से केवल ५०० वर्ष पूर्व का ही सिद्ध करेगा। वस्तुतः इतिवृत्तात्मक रूप में वेद में किसी प्रकार के ऐतिहासिक या भौगोलिक संकेत न होने से इस प्रकार के सभी मत केवल कल्पना पर आधारित हैं।

ऐतिहासिक व्यक्तियों तथा भौगोलिक स्थानों के नाम अलग-अलग पड़े भले ही वेदों में इतिहास होने का भ्रम उत्पन्न करें परन्तु जब उन्हें सन्दर्भान्तर्गत पूर्वापर सम्बन्धों को जोड़कर उनमें सामंजस्य करने की चेष्टा की जाती है तो तथ्यों के विपरीत होने से उनकी तथाकथित ऐतिहासिकता का तत्काल लोप हो जाता है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए हम यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

१. अथर्ववेद (१३।३।२६) में आया है—**'कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनः।'** आपाततः इस मन्त्र में कृष्णा (द्रौपदी) के पुत्र अर्जुन का उल्लेख हुआ प्रतीत होता है। यदि वास्तव में ऐसा होता तो अर्जुन को द्रौपदी का पति बताना चाहिए था जैसा कि महाभारत में लिखा है। इन पदों का यौगिक अर्थ करने पर स्थिति स्पष्ट हो जाती है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार कृष्णा रात्रि का नाम है और रात्रि से उत्पन्न होनेवाले सूर्य या दिन का नाम अर्जुन है—**'रात्रिर्वै कृष्णा असावादित्यस्तस्या वत्सोऽर्जुनः।'** इस प्रकार यहाँ कृष्णा से महाभारत की द्रौपदी और अर्जुन से महाभारत के अर्जुन का ग्रहण नहीं किया जा सकता।

२. **'अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च'** (ऋ० ६।९।१)—यहाँ कृष्ण और अर्जुन एक ही व्यक्ति के नाम हैं, जबकि इतिहास (महाभारत) के अनुसार ये दो भिन्न व्यक्ति हैं। वस्तुत: यहाँ कृष्ण और अर्जुन दोनों दिन के नाम हैं।

३. यजुर्वेद (२३।१८) में अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका तीनों नामों को एक साथ देखकर कह दिया जाता है कि ये तीनों वही लड़कियाँ हैं जिन्हें भीष्म भगाकर ले गये थे, परन्तु यहाँ उन्हें काम्पील-वासिनी कहा है, जबकि महाभारत में इन्हें काशिराज की कन्याएँ बताया है। वस्तुत: ये शब्द माता, दादी और परदादी के वाचक हैं। अथवा यजुर्वेद १२।७६ व ३।५७ में आयुर्वेद में ये ओषधियों के नाम हैं।

यही स्थिति भौगोलिक संकेत देनेवाले शब्दों की है। यजुर्वेद में मन्त्र आया है—

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥—३४।११

इस मन्त्र में पाँच नदियों का उल्लेख होने से यहाँ पंजाब अर्थात् एक प्रदेश विशेष का उल्लेख बताया जाता है। सभी जानते हैं कि न तो सरस्वती नाम की नदी पंजाब में बहती है और न पंजाब की प्रसिद्ध पाँच नदियाँ सरस्वती में मिलती हैं और न सरस्वती ही पाँच धाराओं में बहती है। वास्तव में इस मन्त्र में पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान अथवा मन की पाँच वृत्तियों का स्मृति में ठहरकर वाणी द्वारा अनेकविध अभिव्यक्त होने का उल्लेख है।

ऋग्वेद (१०।७५।५) के जिस मन्त्र के आधार पर आर्यों के सप्त-सिन्धु (सात नदियोंवाले) देश में बसने की कल्पना की जाती है, वहाँ सात के स्थान पर दस नदियों के नाम दिये हैं। अगले ही मन्त्र में लखनऊ के पास बहनेवाली गोमती का नाम भी आया है। मन्त्र इस प्रकार है—

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वती शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ।।

भगीरथ द्वारा गंगा के लाये जाने से बहुत पहले वेदों का प्रादुर्भाव हो चुका था। गोमती की गिनती तो नई नदियों में की जाती है। इन शब्दों को नदीपरक मानकर इनकी संगति नहीं बैठ सकती। भौगोलिक वर्णन से इन मन्त्रों का कोई सम्बन्ध नहीं है। वस्तुत: यहाँ आध्यात्मिक स्रोतों और शरीरस्थ इडा, पिंगला आदि नाड़ियों का वर्णन है। कालान्तर में इन्हीं मन्त्रों से शब्द लेकर नदियों का नामकरण कर दिया गया। वेद से लोक में नाम आये हैं, लोक से वेद में नहीं।

यह सब लिखने का हमारा अभिप्राय इतना ही है कि वेद में आये शब्दों के आपातत: ऐतिहासिक अथवा भौगोलिक संकेत करने के कारण उनके आधार पर आर्यों के विदेशी होने का निश्चय करना युक्तियुक्त नहीं है।

कुछ वर्ष हुए यूनेस्को के तत्त्वावधान में होनेवाली एक अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठी में भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करनेवाले सात सदस्यीय दल ने एक मत से आर्यों के ईरान से आकर भारत में बसने विषयक मान्यता का प्रतिवाद किया था। इस सन्दर्भ में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के ३१ अक्तूबर १९७७ में प्रकाशित यह विवरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—

"There is no conclusive evidence of Aryan inmigration into India from outside, according to Indian historians, linguists and archaelogists who participated in the international seminar in Dashambe, the capital of Soviet Republic of Tajikistan. Dr. N. R. Banerjee, Director of national Museum and a member of the Indian delegation, said that Indian scholars made out this point at the seminar and the papers presented by them were very much appreciated. The seminar was held under the aegies of UNESCO to discuss the problem of ethnic movement during the second millenium B. C. Nienty

delegates from the Soviet Union, West Germany, Iran, Pakistan and India attended. The seven member Indian delegation was led by Prof, B. B. Lal, Director of Advanced Studies. It was pointed out by Indian scholars that the archaeological material associated with Aryans in different regions and periods in India did not show any links with the archaeological survival of the Aryans in Afghanistan, Iran and Central Asia."

तात्पर्य यह है कि पुरातत्त्व के आधार पर इस बात की एक भी साक्षी नहीं मिली जिससे आर्यों का कहीं बाहर—ईरान, अफ़गानिस्तान या मध्य एशिया से आकर भारत पर बलात् अधिकार कर लेना सिद्ध होता हो।

तत्पश्चात् हम इस देश के दो शिक्षा मन्त्रियों--श्री प्रताप चन्द्र तथा श्री कृष्णचन्द्र पन्त—से मिलकर आग्रह कर चुके हैं कि जब स्वयं सरकार द्वारा नियुक्त अधिकृत विद्वानों की ओर से समवेत स्वर में आर्यों के बाहर से आने सम्बन्धी भ्रान्त धारणा का प्रत्याख्यान हो चुका है, तब शिक्षा मन्त्रालय तथा गृह मन्त्रालय का यह कर्त्तव्य है कि इस विषय में निश्चित आदेश देकर इतिहास की पुस्तकों, सरकारी निर्देशों, संविधान आदि में से आदिवासी जैसे शब्दों तथा आर्यों एवं द्रविड़ों आदि में भेद-विषयक विवरणों को निकलवा दें।

हमारे पास इस बात के पुष्ट प्रमाण हैं कि आर्य लोग इस देश के मूल निवासी हैं और उनसे पहले यहाँ अन्य कोई जाति नहीं रहती थी। इस देश का सबसे प्राचीन नाम आर्यावर्त्त है। जहाँ कहीं भी मनुष्यों का वास होता है, उस भूखण्ड को किसी-न-किसी नाम से अवश्य जाना जाना है। आर्यों के आने (?) से पूर्व यदि यहाँ द्रविड़ों आदि का वास रहा होता तो उनकी भाषा और साहित्य में इस देश का कोई-न-कोई नाम अवश्य उपलब्ध होता। इस प्रकार का कोई संकेत न पाये जाने से विस्पष्ट है कि आर्यों के इस देश पर आक्रमण की बात सर्वथा कपोलकल्पित है। T. Burrow जैसे विश्वविख्यात

पुरातत्त्ववेत्ता ने लिखा है—"The Aryan invasion of India is recorded in no written document and it cannot yet be traced archaeologically."—Quoted from 'The Early Aryans published in cultural History of India, edited by A. L. Basham, published by Clarandon Press oxford, 1975.

अर्थात् आर्यों के भारत पर आक्रमण की मान्यता का न कोई प्रमाण है और न इसे पुरातत्त्व की सहायता से सिद्ध किया जा सकता है।

इस प्रसंग में प्राय: सिन्धु घाटी की हड़प्पा संस्कृति का राग अलापा जाता है। हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो में इस निमित्त किये गये उत्खनन (Excavations) में उपलब्ध सामग्री के आधार पर यह दावा किया जाता है कि यह इस देश की प्राचीनतम संस्कृति है। इसके पतन के बाद ही यहाँ आर्यों का आगमन हुआ था। इस विषय में हम अपनी ओर से कुछ न कहकर मोहनजोदड़ो की खुदाई में प्राप्त एक सील (मुद्रा) की फ़ोटोस्टेट प्रतिकृति दे रहे हैं जो स्वयं अपनी कहानी कहती प्रतीत होती है—

Photostat of Plate No. CXII, Seal No. 387 from the excavations at Mohenjo-daro.

(From Mohenjo-daro and the Indus Civilization-edited by Sir John Marshall, Cambridge, 1931)

यहाँ एक वृक्ष पर बैठे दो पक्षी दिखाई दे रहे हैं जिनमें से एक फल खा रहा है, जबकि दूसरा केवल देख रहा है।

ऋग्वेद का एक मन्त्र इस प्रकार है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

—ऋग्वेद १।१६४।२०

इस मन्त्र का भाव यह है कि एक (संसाररूपी) वृक्ष पर दो (लगभग एक जैसे) पक्षी बैठे हैं। उनमें एक उसका भोग कर रहा है, जबकि दूसरा बिना उसे भोगे उसका निरीक्षण कर रहा है।

स्पष्ट है, मोहनजोदड़ो की खुदाई में प्राप्त चित्र में जो कुछ दिखाया गया है, उसका आधार ऋग्वेद का उपर्युक्त मन्त्र है। यह निर्विवाद है कि संसार में ऋग्वेद से पुरानी कोई पुस्तक नहीं है। कलाकार द्वारा बनाये गये चित्र से पहले ऋग्वेद का अस्तित्व सिद्ध है मोहनजोदड़ो की खुदाई में इस चित्र के पाये जाने से वेदों का (कम से कम ऋग्वेद का) तथाकथित हड़प्पा संस्कृति का पूर्ववर्ती होना सिद्ध है। वेद आर्यों के ग्रन्थ हैं, इसलिए सबसे पूर्व आर्यों का होना प्रमाणित है। पुरातत्त्व विभाग से सम्बद्ध हमारे एक सहाध्यायी मित्र का कहना है कि हो सकता है कि हड़प्पा और आर्य संस्कृति समकालीन हों। दुर्जनतोषन्याय से यह मान लिया जाए तो भी आर्यों से पहले किसी के यहाँ होने की कल्पना तो मिथ्या सिद्ध होती ही है।

इसी प्रसंग में इण्डियन एक्सप्रेस (नई दिल्ली, ३-८-८५) में प्रकाशित यह विवरण अत्यन्त महत्वपूर्ण है—

"Mr. Vishnu Shridhar Vakankar, former Head of the Archaeology Department of Ujjain (Vikram) University, claimed here on Thursday that he had successfully made a break through in solving the mystery of the writing of the seals found in the Indus Valley civilisation of Harappa and Mohenjodaro. He claimed that the Indus Valley civilisation

script was original to India and its roots are found in the Aryan Civilisation."

He challenged foreign claims that the Indus Valley Civilisation was non-Aryan by stating that recent results were based on computers."

डाक्टर वाकंकर ने अपने दूसरे वक्तव्य में, जो Times of India (Ahmedabad, 22.12.85) में प्रकाशित हुआ, कहा—"His survey (conducted by 30 experts drawn from different disciplines like archaeology, geology, history, folklore etc.) when completed might even drastically change the popular conception among historians that Aryans invaded India from Central Asia, etc."

अर्थात् उज्जैन (विक्रम) विश्वविद्यालय में पुरातत्त्व विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डॉ० विष्णु श्रीधर वाकंकर ने ३० विशेषज्ञों के सहयोग से सिन्धु घाटी की सभ्यता से सम्बन्धित सामग्री का २० वर्ष तक अध्ययन करके यह सिद्ध किया है कि हड़प्पा की सभ्यता का मूल आर्य सभ्यता में था, अर्थात् हड़प्पा सभ्यता से आर्य सभ्यता पुरानी थी। उनके मत में हड़प्पा सभ्यता आर्य सभ्यता का ही अंग थी। यह निष्कर्ष उन्होंने कम्प्यूटर की सहायता से निकाला है। डॉ० वाकंकर का यह भी कहना है कि जब उनकी खोज का काम पूरा हो जाएगा तो वह आर्यों के विदेशी आक्रान्ता होने की मान्यता को मिथ्या सिद्ध कर सकेंगे।

१९६० में सर्वप्रथम डॉ० फ़तहसिंह ने सिन्धु लिपि को सफलतापूर्वक पढ़ा था। उन्होंने उस समय तक लगभग ढाई हज़ार मुद्राएँ पढ़ ली थीं जिनके आधार पर 'राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान' जोधपुर से प्रकाशित होनेवाली 'स्वाहा' पत्रिका में उन्होंने कई लेख लिखे थे। डॉक्टर फ़तहसिंह की खोज पर आधारित एक लेख डॉक्टर पद्मधर पाठक ने 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में उनके समर्थन में लिखा था इसके बाद इसी पत्र में केम्ब्रिज के डॉ० अल्चिन ने सम्पादक के नाम

पत्र लिखकर उनको सावधान किया था कि डॉ० सिंह की खोज से तो आर्य तथा द्रविड़ सभ्यता का भेद ही नहीं रहेगा।

अनेक भारतीय विद्वानों ने आर्यों के भारतीय मूल के होने की मान्यता का समर्थन किया है। उन्होंने जिन तर्कों के सहारे अपने मत की पुष्टि की है, उनमें से कुछेक ये हैं—

१. एक देश को छोड़कर दूसरे देश में जा बसनेवाली जातियों को शताब्दियों तक अपने मूल की स्मृति रहती है। भारत में बसे हुए पारसियों को आठ सौ वर्ष बीत जाने पर भी अपने मूल स्थान की स्मृति बनी हुई है। प्राचीन मिश्रदेशवासियों तथा फ़िनिशियनों को अपने-अपने मूल के देशों का स्मरण है, भले ही वे उनकी ठीक-ठीक स्थिति न बता सकें। परन्तु वैदिक आर्यों को अपने मूल निवास की कोई स्मृति नहीं है। वे सदा से इसी देश को अपना समझते आये हैं।

२. वैदिक साहित्य प्राचीनतम साहित्य है। यदि आर्य लोग बाहर से आकर यहाँ बसे तो क्या कारण है कि जहाँ कहीं से भी वे आये, उस देश में उनका साहित्य उपलब्ध नहीं होता। वहाँ उसके कुछ अंश तो मिलने चाहिए थे। यह कहना कि आर्यों के मस्तिष्क का विकास भारत में आकर हुआ, युक्तियुक्त नहीं जान पड़ता। इसकी अपेक्षा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि भारतस्थित आर्यों में से ही कुछ लोग बाहर गये। वे ऐसे साधारण लोग थे जिनका सांस्कृतिक विकास साधारण स्तर का था, अतः जहाँ वे जाकर बसे वहाँ के लोगों को वे उच्च स्तर का साहित्य व संस्कृति नहीं दे सके।

३. ऋग्वेद में उपलब्ध भौगोलिक संकेतों से भी प्रतीत होता है कि आर्य लोग मूलतः पंजाब के आस-पास के रहनेवाले थे।

४. यूरोप की किसी भाषा में आर्य शब्द का कोई विकृत रूप देखने में नहीं आता। यदि वहाँ कहीं आर्यों का मूल स्थान होता तो उनकी भाषा में आर्य से मिलता-जुलता कोई शब्द अवश्य होता।

५. भारत में प्रचलित 'अनारी' शब्द बड़ा ऐतिहासिक है। यह

शब्द 'अनार्य' का अपभ्रंश है। जिस प्रकार आर्य शब्द सज्जन एवं शिक्षित के लिए प्रयुक्त होता है, उसी प्रकार अनार्य से बिगड़ा हुआ शब्द 'अनारी' या अनाड़ी मूर्ख, कमसमझ या असभ्य के लिए प्रयुक्त होता है।

६. संस्कृत सब भारतीय भाषाओं का स्रोत है। दक्षिण भारत (जहाँ के लोगों को आर्यों के आने से पहले यहाँ के मूल निवासी बताया जाता है) की भाषाओं में भी ७५ से ९० प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। यदि संस्कृत बाहर से आकर यहाँ बसनेवाले आर्यों की भाषा है, तो उनके आने से बहुत पहले से बसे हुए यहाँ के मूल निवासियों की भाषा में ७५ से ९० प्रतिशत संस्कृत के शब्द कहाँ से आ गये ?

□

आर्य और दस्यु

पाश्चात्य मान्यता के विदेशी तथा तदनुयायी भारतीय लेखकों के अनुसार ऋग्वेद में आर्य तथा दास या दस्यु शब्द भिन्न-भिन्न जातियों के बोधक हैं। उनका कहना है कि आर्य लोग भारत के मूल निवासी नहीं थे। भारत के आदिवासी, जिन्हें वेद में दास या दस्यु नामों से अभिहित किया है,[1] वे कोल, द्रविड़, सन्थाल, भीलादि भारत के मूल निवासी थे। आर्यों का धर्म, सभ्यता, रंग-रूप, आकृति, भाषा आदि भिन्न थी। आदिवासी जातियों का वर्ण काला था, उनकी नाक चपटी थी और वे शिश्न अर्थात् लिङ्ग की पूजा किया करते थे। आर्यों के साथ उनका सदा युद्ध हुआ करता था। आर्यों की बुद्धि प्रखर थी, उनके शास्त्रास्त्र भी अच्छे थे, इसलिए वे प्रायः आदिवासियों पर विजय प्राप्त करते थे और उन्हें अपना दास बना लेते थे। इन्हीं मूल निवासियों के लिए वेद में दास तथा दस्यु जैसे घृणावाचक शब्दों का प्रयोग किया गया है। वैदिक धर्म को भ्रष्ट करने, अंग्रेजी राज्य को सुदृढ़ करने और भारतीयों को ईसाई बनाने के उद्देश्य से ही इस प्रकार की भ्रान्तियाँ फैलाई गईं जिनके परिणामस्वरूप इस देश को न जाने कितनी विपत्तियों का सामना करना पड़ा है। वास्तव में वेद में आये

---

1. The Aryan invaders or immigrants found in India two groups of people, one of which they named as Dasas or Dasyus and the other as Nishadas.

—R. C. Majumdar : Vedic Age, Page 156

आर्य और दस्यु आदि शब्द जातिवाचक न होकर गुणवाचक हैं। कुछ जानबूझकर और कुछ वेद के मर्म को न समझने के कारण इन शब्दों के अन्यथा अर्थ करके देश को विघटन के मार्ग पर डाल दिया गया है।

सुप्रसिद्ध दाक्षिणात्य विद्वान् प्रिंसिपल पी० टी० श्रीनिवास अय्यङ्गार ने अपनी पुस्तक 'Dravidian Studies' में लिखा है—

"The Aryas and Dasyus are referred to not as indicating different races. These words refer not to race but to cult. The Dasyus are without rites, fireless, non-sacrificers, without prayers, without riks etc. Thus the difference between Aryas and Dasyus was not one of race, but of cult."

इस प्रकार श्री अय्यङ्गार ने आर्य और दस्युओं के भेद को जातीय न मानकर गुण-कर्म-स्वभाव पर आश्रित माना है। उनके वक्तव्य का आधार ऋग्वेद का यह मन्त्र प्रतीत होता है—

अन्यव्रतममानुषमयज्वानमदेवयुम्।
अव स्वः सखा दुधुवीत पर्वतः सुघ्नाय दस्युं पर्वतः ॥८।७०।११॥

यहाँ दस्यु के विशेषण (अन्यव्रतम्) सत्य, अहिंसा, परोपकार आदि से विरुद्ध संकल्पवाला (अमानुषम्) मानवीय व्यवहार न करनेवाला (अदेवयुम्) दिव्य गुणों से युक्त विद्वानों की कामना न करनेवाला इत्यादि कहे हैं। इनसे किसी जाति या वर्ग विशेष के प्रति घृणा या विद्वेष की प्रतीति नहीं होती।

मद्रास यूनिवर्सिटी के श्री वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार ने २९-३० नवम्बर १९४० को मद्रास यूनिवर्सिटी में दो महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिये थे जो ऐडयार लायब्रेरी से १९४७ में 'Origin and Spread of the Tamils' नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुए। श्री दीक्षितार ने लिखा है—

"The fact is that the Dasyus were not non-Aryans. The theory that the Dasyus—Dravidians inhabited the Panjab and the Ganges Vally at the time of the so called Aryan invasion of

India and overcome by the latter, they fled to South India and adopted it as their home cannot stand."

—Origin and Spread of Tamils by V. R. Ramachandra Diksitar, p. 14

अर्थात्–सचाई यह है कि दस्यु (जातीय भेद की दृष्टि से) आर्येतर नहीं थे। यह मत—कि दस्यु और द्रविड़ लोग पंजाब और गंगा की घाटी में रहते थे और जब आर्यों ने आक्रमण किया तो वे आर्यों से पराजित होकर दक्षिण की ओर भाग गये और दक्षिण भारत को ही उन्होंने अपना घर बना लिया—युक्तियुक्त नहीं है।

म्यूर महोदय ने भी इसी मत का प्रतिपादन करते हुए लिखा है—

"I have gone over the name of Dasyus or Asuras mentioned in the Rigveda with the view of discovering whether any of them could be regarded as of non-Aryan or indigenous origin, but I have not observed that appeared to be of this character."

—Original Sanskrit Texts, Vol. II, P.387

अर्थात्—मैंने ऋग्वेद में आये दस्यु अथवा असुर नामों पर इस दृष्टि से विचार किया कि क्या उनमें से किसी को अनार्यों या मूल निवासियों की उत्पत्ति का समझा जा सकता है ? किन्तु मुझे ऐसा कोई नाम नहीं मिला।

ऋग्वेद ९।६३।५ में कहा है—

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । अपघ्नन्तो अराव्णः ।

परमेश्वर का आदेश है कि तुम ज्ञानैश्वर्य अथवा आत्मिक शक्ति को बढ़ाते हुए, कर्मशील, प्रमादरहित होकर अदानभाव—कृपणता आदि का नाश करते हुए (विश्वम् आर्यम् कृण्वन्तः) विश्वभर को आर्य बनाओ।

इस मन्त्र में सबको आर्य बनाने की प्रेरणा की गई है। यदि आर्य और दस्यु जन्मजात या परम्परागत होते तो उन्हें सुधारकर आर्य कैसे बनाया जा सकता था ? इस मन्त्र पर विचार करने से स्पष्ट है

कि आर्य बनाने के लिए किन्हीं विशिष्ट गुणों का विकास करना अपेक्षित है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जिसमें ये गुण नहीं हैं, अर्थात् जो मूर्ख है, आलसी और कृपण है, वह आर्य नहीं, दस्यु है। अभिप्राय यह है कि आर्य और दस्यु शब्द जातिवाचक नहीं, गुणवाचक हैं।

वैदिक वाङ्मय में आर्य शब्द का प्रयोग

वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।

—ऋ० १।५१।८

इस मन्त्र में आर्य पद दस्यु के विलोम अर्थ में आया है और दस्युओं के लिए विशेषण के रूप में 'अव्रत' शब्द का प्रयोग हुआ है। इससे आर्य से श्रेष्ठ उत्तम गुणयुक्त परोपकारी मनुष्य अभिप्रेत है।

वेदों में जहाँ कहीं भी आर्य शब्द आया है, सर्वत्र शुभगुणों से युक्त मनुष्य का वाचक है।

अमरकोष २।७।३ में लिखा है—**'माहाकुलकुलीनार्यसभ्यसज्जन-साधवः।'** इस प्रकार आर्य शब्द कुलीन, सज्जन, सभ्य, साधु आदि का पर्याय है। योगवासिष्ठ निर्वाण० पू० १२६।५४ में कहा है—

कर्त्तव्यमाचरन् काममकर्त्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्रकृताचारो यः स आर्य इति स्मृतः॥

जो कर्त्तव्य कर्मों का सदा आचरण करता है और अकर्त्तव्य कर्मों अर्थात् पापों से दूर रहता है, वह आर्य कहाता है।

किसी विद्वान् ने निम्न आठ गुणों से युक्त मनुष्य की आर्य संज्ञा कही है—

ज्ञानी तुष्टश्च दान्तश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दाता दयालुर्नम्रश्च स्यादार्यो ह्यष्टभिर्गुणैः॥

अर्थात् जो ज्ञानी हो, सदा सन्तुष्ट रहनेवाला हो, मन को सदा वश में रखनेवाला, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, दानी, दयालु और नम्र हो, वह आर्य कहलाता है।

महाभारत में लिखा है—

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति ।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्याः ।।

—उद्योगपर्व ३३।११७

न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः ।
दत्त्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ।।

—उद्योगपर्व ३३।११८

अर्थात्—आर्य वह है जो एक बार शान्त हुए वैर को बढ़ाता नहीं, जो न अभिमान करता है और न कभी निराश होता है, जो अपने सुख में अधिक प्रसन्न नहीं दीखता और दूसरों को दुःखी देखकर सुख अनुभव नहीं करता, दान देकर जो पश्चात्ताप नहीं करता, वह आर्य कहाता है ।

इन गुणों को धारण करनेवाला जो कोई भी हो, वह जिस किसी देश, वंश या कुल में उत्पन्न हुआ हो और गोरे, काले वा गेंहुँए रंग का हो, वह आर्य कहलाएगा ।

भगवद्गीता में जब श्रीकृष्ण ने देखा कि वीर अर्जुन मोहवश क्षात्रधर्म के आदर्श से च्युत हो रहा है तो उन्होंने अर्जुन के इस व्यवहार को **'अनार्यजुष्ट'** (गीता २।२) कहकर उसकी भर्त्सना की ।

बाल्मीकि रामायण में राम के सबको समान दृष्टि से देखने और सबको चन्द्रमा की तरह प्रिय दर्शनवाले होने के कारण उन्हें 'आर्य' कहा है—**'आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः'** ।

—बालकाण्ड १।१६

अयोध्याकाण्ड (१३।५) में राम को वन भेजने की कैकेई की माँग के कारण उसे दशरथ ने 'अनार्या' कहकर सम्बोधित किया । फिर स्वयं महर्षि बाल्मीकि ने भी १९।१९ में इसी कारण 'अनार्या' कहकर उसकी निन्दा की ।

महात्मा बुद्ध ने भी सज्जनों के लिए सर्वत्र आर्य शब्द का प्रयोग

करते हुए उसका लक्षण इस प्रकार किया है—

न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सब्बपाणानं अरियो ति पवुच्चति ॥

—धम्मपद २७०

अर्थात् प्राणियों का हनन करनेवाला आर्य नहीं होता। सब प्राणियों के प्रति अहिंसाभाव रखनेवाला आर्य होता है।

दस्यु शब्द का प्रयोग

आर्य की तरह दस्यु शब्द भी गुणवाचक है। इसलिए सब देशों और कालों में दस्यु होते हैं। महाभारत (शान्तिपर्व ६५।२३) में कहा है—

दृश्यन्ते मानुषे लोके सर्ववर्णेषु दस्यवः।
लिङ्गान्तरे वर्त्तमाना आश्रमेषु चतुर्ष्वपि ॥

सभी प्राणियों और वर्णों में दस्यु स्वभाव के लोग हो सकते हैं।

दस्यु शब्द का अर्थ और व्युत्पत्ति भी उसके गुण-कर्म-स्वभाव पर आश्रित होने की पुष्टि करते हैं। 'दसु उपक्षये' धातु से युच् प्रत्यय के योग से दस्यु शब्द बनता है। निरुक्त ७।२३ में इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है—**दस्युर्दस्यतेः क्षयार्थादुपदस्यन्त्यस्मिन् रसा, उपदासयति कर्माणि'**—दस्यु वह है जो (अकर्मा) निकम्मा है या कुत्सित कर्म करनेवाला है; जो शुभकर्मों से क्षीण है या शुभकर्मों में बाधा डालता है। ऋग्वेद १०।२२।८ में दस्यु का लक्षण इस प्रकार किया है—

'अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः।'

अर्थात् दस्यु वह है जो सोच-विचार कर कार्य नहीं करता, जो अहिंसा, सत्य, दया आदि व्रतों को धारण न करके उनके विपरीत हिंसा, असत्य, क्रूरता आदि का व्यवहार करता है तथा जो (अमानुषः) मानवोचित आचरण नहीं करता है। वेदों में ऐसे अमानवीय एवं असामाजिक तत्त्वों को ही दस्यु नाम से अभिहित कर उनके नाश पर

बल दिया गया है।

ऋग्वेद का यह मन्त्र इस प्रसंग में विशेषतः उल्लेखनीय है—

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन् सुतुका नाहुषाणि ॥

—ऋ० ६।२२।१०

इसमें इन्द्र अथवा राजा को कहा गया है कि तुम (वृत्रा दासान्यार्याणि करः) धर्म कार्यों में विघ्न डालनेवाले और उनका नाश करनेवाले दासों को भी आर्य अर्थात् श्रेष्ठ, सदाचारी बनाओ। सायण ने इसका अर्थ करते हुए लिखा है कि इन्द्र का कार्य (दासानि) कर्महीनानि मनुष्यजतानि—कर्महीन मनुष्यों को (आर्याणि) श्रेष्ठ मनुष्य बनाना है। इससे स्पष्ट है कि आर्य—दस्यु का अन्तर कर्मों के कारण है, जाति के कारण नहीं।

मनुस्मृति (१०।४५) में कहा है—

मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः ।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥

अर्थात् लोक में ब्राह्मणादि वर्णों से श्रेष्ठ कर्म न करने के कारण बहिष्कृत जो जातियाँ हैं, वे चाहे म्लेच्छ भाषाएँ बोलती हों, चाहे आर्यभाषा, सब दस्यु हैं। इससे स्पष्ट है कि आर्यों में भी जो दुष्ट हैं, वे दस्यु कहाते हैं।

मैकडानल ने लिखा है—"The term Dasa, Dasyu properly the name of the dark aborginies."

ग्रिफिथ ने ऋग्वेद १।१०।१ की टिप्पणी में लिखा है—"The dusky brood : The dark aborginies who opposed the Aryans."

अर्थात् काले वर्ण के आदिवासियों को जो आर्यों का विरोध करते थे, दास या दस्यु कहते थे। भारत के तथाकथित आदिवासियों को काला सिद्ध करने के लिए वे ऋग्वेद (१।१०।११; १।१३०।८; २।२०।७; ४।१६।१३; ६।४७।२१; ७।५।३) के छह मन्त्रों को उद्धृत

करते हैं जिनमें कृष्ण शब्द का प्रयोग हुआ है। वस्तुतः इन मन्त्रों में मनुष्यों का नहीं, भिन्न-भिन्न प्रकार के मेघों का वर्णन है। जैसे—'कृष्णगर्भाः' का अर्थ स्कन्दस्वामी ने किया है—**'वृष्टिलक्षणा आपः कृष्णगर्भाः कृष्णवर्णस्य मेघस्य गर्भभूतत्वात्।** काली-काली घटाओं से युक्त मेघों को 'कृष्णगर्भाः' कहा है। वेद में दस्युओं के तथाकथित नेता इलीविश, शम्बर, चुमुरि, धुनि, वर्चिन् आदि भी मेघों के ही भेद हैं। अनेक मन्त्रों में इन्द्र को 'वृत्रहा' अर्थात् वृत्रों का नाश करनेवाला कहा है। वेद में मेघों का नाम वृत्र है और उन्हें विदीर्ण कर वर्षा करनेवाला होने से सूर्य अथवा विद्युत् का नाम इन्द्र है। वेदार्थदीपिका निरुक्त के रचयिता यास्काचार्य ने आज से लगभग पाँच हज़ार वर्ष पूर्व लिखा है—**'अपां ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते। तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति।'** अर्थात् युद्ध प्रतीत होनेवाला यह वर्णन वर्षा की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। वेद की काव्यात्मक शैली को न समझने के कारण पाश्चात्य लोगों ने वेद में आये शब्दों तथा मन्त्रों का अनर्थ करके कुछ का कुछ लिख डाला।

पाश्चात्य मत वालों ने 'शिश्नदेवाः' पद को लेकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि आदिवासी शिश्न अर्थात् लिङ्ग-पूजक थे। उनका यह अर्थ भ्रममूलक है। 'शिश्नदेवाः' का अर्थ है—**'शिश्नेन उपस्थेन्द्रियेण दीव्यन्ति क्रीडन्ति इति शिश्नदेवाः।'** अर्थात् कामी, भोगी, व्यभिचारी पुरुष को वेद में 'शिश्नदेवः' कहा गया है। यास्काचार्य ने ऋ० ७।२१।५ की व्याख्या में 'शिश्नदेवाः' का सीधा अर्थ 'अब्रह्मचर्याः' किया है (निरुक्त ४।१९)। वेद में ऋ० ७।२१।५ तथा १०।९९।३ इन दो मन्त्रों में 'शिश्नदेव' पद आया है। इन दोनों मन्त्रों में इन्द्र से यही प्रार्थना की गई है कि लोगों को पीड़ा पहुँचानेवाले वंचक, कुटिल तथा शिश्नदेव=व्यभिचारी अर्थात् दुष्ट लोग हमारे यज्ञों=धार्मिक कार्यों में विघ्न न डालें। इन मन्त्रों में पूजा का प्रकरण ही नहीं है। किसी भी देश, काल, समाज से सम्बन्धित विषयी

या व्यभिचारी पुरुष को 'शिश्नदेव' नाम से अभिहित किया जा सकता है।

वेदों में तो अव्रत, अन्यव्रत, अयज्यु, अकर्मन्, अमानुष, अदेवयुः, कुसीदी व्यक्ति को दस्यु कहा गया है, चाहे वे किसी भी जाति या वर्ग के हों। पाश्चात्य विद्वानों ने राजनीतिक कारणों से भारतीयों में फूट डालने के उद्देश्य से वेदमन्त्रों और वैदिक शब्दों के कल्पित अर्थ किये हैं।

वेद में 'अनासः' शब्द आया है। इसे देखकर पाश्चात्य मान्यता-वालों ने इसका अर्थ किया है—जिनकी नाक नहीं, अर्थात् चपटी नाक-वाले। उनकी यह कल्पना भी निराधार है। 'नास्' का अर्थ नासिका नहीं, प्रत्युत शब्द करना है। 'णास् शब्दे' धातु से 'नासते शब्दं करोति इति नाः (नास्) अर्थात् जो शब्द करता है, वह 'नास्' है। 'न शब्दं करोति इति अनास्'—जो शब्द नहीं करता वह 'अनास्' है। ऋग्वेद के जिस मन्त्र (५।२९।१०) में यह शब्द आया है, वहाँ मेघ का प्रकरण है। इसलिए मेघों के विशेषण रूप में इसका अर्थ न गरजनेवाले मेघ है। घ्राणेन्द्रिय रूप नासिका—चपटी या अन्यथा—से इस शब्द का कोई सम्बन्ध नहीं है।

दुर्भाग्यवश, प्रकारान्तर से—प्राचीन भारत के इतिहास को निमित्त बनाकर—वेद और वैदिककाल के आर्यों का जो चित्र वर्तमान और भावी पीढ़ियों के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। उसे पढ़-सुन कर किसी के हृदय में अपने अतीत के प्रति गौरव की भावना नहीं रह सकती। अभी भी हमारी शिक्षण संस्थाओं में जो कुछ पढ़ाया जा रहा है, वह सब Made in England है। इस सन्दर्भ में हम भारत के महान् वैज्ञानिक, शिक्षाशास्त्री तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission) के तत्कालीन अध्यक्ष डाक्टर दौलतसिंह कोठारी के उस भाषण के कुछ अंश उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं जो उन्होंने सन् १९६९ में दिल्ली में सम्पन्न International

Conference on Science and Technology के समापन समारोह के अवसर पर दिया था। उन्होंने कहा था—

"I regret that the centre of gravity of India's intellectual life was 'outside India.' We are influenced largely by what happens outside. Indian universities have been implanted from outside and had not yet taken roots in the country's soil. Indian thought enshrined in ancient Sanskrit books did not fined a place in the country's university education. The country should rediscover its ancient heritage." —The Tribune dated 18-1-69

अर्थात् खेद है कि आज भी देश के बौद्धिक जीवन के आकर्षण का केन्द्र भारत से बाहर है। जो कुछ बाहर होता है, प्रायः हम उसी से प्रभावित होते हैं। भारतीय विश्वविद्यालय बाहर से लाकर रोपे गये हैं और उनकी जड़ें अभी तक देश की धरती में नहीं जमी हैं। संस्कृत के हमारे प्राचीन ग्रन्थों में सुरक्षित विचारधारा को देश की विश्वविद्यालयीय शिक्षा में स्थान नहीं मिला है। देश को अपनी प्राचीन धरोहर को खोजना चाहिए।

परन्तु डाक्टर कोठारी जैसे मनीषी की चेतावनी के बावजूद देश में जो कुछ हो रहा है उसका पता १५ फ़रवरी १९७९ को दिल्ली में सम्पन्न Indian History and Culture Society के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर दिये गये बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर डा० लल्लनजी गोपाल के निम्न वक्तव्य से लगता है—

"Before the Communist party formed its government in China, it carried on for 20 years a systematic campaign of producing books interpreting every aspect of chinese life in Marxist terms. The aim behind it was to prepare the minds of the people to accept the correctness of various phases of man's history as described by Marx. A similar attempt is being made by historians here... : Dr. D. N. Jha who is Joint Secretary of Indian History Congress and his colleagues in Delhi university

did not hide their marxist leanings and said that they would live to interpret historical events in Marxist terms."

—Indian Express, Feb. 14-15, 1979

अर्थात् चीन में साम्यवादी दल की सरकार बनने से पूर्व निरन्तर बीस वर्ष तक योजनाबद्ध रूप में इस प्रकार की पुस्तकें तैयार की जाती रहीं जिनमें चीनी जीवन-पद्धति की व्याख्या मार्क्स के अनुसार की गई थी। इसका उद्देश्य वहाँ की जनता के मस्तिष्क को इस बात के लिए तैयार करना था कि वह समय आने पर मानव इतिहास की साम्यवादी व्याख्या को स्वीकार कर ले। भारत में भी इतिहास के विद्वान् इसी प्रकार का प्रयत्न कर रहे हैं। दिल्ली यूनिवर्सिटी में डा० डी० एन० झा, (जो Indian History Congress के संयुक्त सचिव हैं) और उनके साथी अपने साम्यवादी दृष्टिकोण को छिपाते नहीं हैं और स्पष्ट कहते हैं कि वे ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या मार्क्स की मान्यताओं के अनुसार करने में संलग्न रहेंगे।

भाव यह है कि भारत के इतिहास को अब साम्यवादी रंग दिया जा रहा है। दूसरी ओर भारत सरकार द्वारा देश के इतिहास को विकृत किया जा रहा है। राज्यों के सहयोग से केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय के तत्त्वावधान में पाठ्यक्रमों से अवांछनीय पुस्तकें निकालने की योजना पर काम चल रहा है। अब राष्ट्रीय परिषद् ने इतिहास लेखन के लिए जो हिदायतें दी हैं, यदि उनका पालन किया गया तो स्कूलों में पढ़ाया जानेवाला इतिहास न केवल निरर्थक हो जाएगा, बल्कि सत्य शोध की दिशा में इतिहास की भूमिका ही सन्देह के घेरे में आ जाएगी। उदाहरणार्थ, गुप्त शासनकाल की भारतीय इतिहास को स्वर्णकाल या औरंगजेब को इसलाम का ध्वजधारी नहीं कहा जा सकेगा। मुसलिम शासकों को विदेशी नहीं कहा जा सकेगा। इसी प्रकार किसी कालखण्ड को 'स्वर्णयुग' या 'अन्धकारयुग' कहना अमान्य होगा। यदि नये निर्देशों पर अमल होता है तो महाराष्ट्र की पाठ्य-

पुस्तकों में शिवाजी को विशेष गरिमा प्रदान नहीं की जा सकेगी।

—नव भारत टाइम्स, दिल्ली, २५।१।८२

पहले मुसलमानों ने हमारे इतिहास को नष्ट किया, फिर अंग्रेज़ों ने उसे विकृत किया और अब एक ओर साम्यवादी तो दूसरी ओर भारत सरकार मनमाने ढंग से उसकी कतरब्योंत में संलग्न है। इतिहास तो उसे कहते हैं जिसमें तथ्यों को याथातथ्य रूप में प्रस्तुत किया जाए—इति—ह—आस। किसी कारण सत्य को तोड़ना-मरोड़ना बौद्धिक आत्मघात होगा। कालान्तर में यह समझना भी कठिन हो जाएगा कि कल का भारत क्या था, आज क्या है और कल क्या होगा।

□□□

स्वामीजी की अन्य रचनाएँ हैं—

१. अनादि तत्त्व दर्शन—पुरस्कृत
२. वेदमीमांसा
३. अध्यात्म मीमांसा
४. तत्त्वमसि अथवा अद्वैत मीमांसा—पुरस्कृत
५. स्वराज्य दर्शन—पुरस्कृत
६. राजधर्म—सम्पादित
७. भूमिका-भास्कर-ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका का विस्तृत भाष्य —प्रेस में
8. Vedic Concept of God
9. Theory of Reality
10. The Brahmasutra—a new approach
11. The Anatomy of Vedanta
12. Thy Age of Shankara—Tr.
13. Political Science—Ed.